

संपादकीय

समय के पृष्ठों पर साहित्य की 'वाग्धारा' के माध्यम से कुछ कहने - सुनने की आकुलता के साथ पत्रिका का दूसरा अंक लेकर हम आपके सामने हैं। इन दिनों हमारी सामाजिक- सांस्कृतिक चेतना और मूल्यवत्ता को रेखांकित करते रहना आवश्यक लग रहा है। भारतीय ज्ञान धारा की पुनर्खोज और सूचना-तंत्र के अभूतपूर्व विस्तार के बीच, जब हम वर्तमान राष्ट्रीय परिदृश्य पर दृष्टि डालते हैं, तो पाते हैं कि समाज केवल सुविधाओं से नहीं, बल्कि विचार और संवेदनाओं से संचालित होता है। आज भारत एक ओर आर्थिक व तकनीकी सबलता के उच्च शिखरों को छू रहा है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक धुवीकरण, मानसिक असंतोष और संवेदनाओं के छीजते जाने की चुनौतियों से भी जूझ रहा है। ऐसे समय में साहित्य की आवश्यकता केवल पठन-पाठन तक सीमित न रहकर एक सामाजिक और नैतिक अनिवार्यता बन जाती है।

भारत की वास्तविक शक्ति इसकी बहुभाषिकता और विविधता में निहित है। हमारी अनेक भाषाएँ कोई विभाजन रेखा नहीं हैं, बल्कि ये एक ही महासागर में मिलने वाली सांस्कृतिक नदियाँ हैं। तमिल, बांग्ला, मराठी, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, असमी, उड़ियाया संथाली - हर भाषा का अपना समृद्ध इतिहास और लोक-ज्ञान है। यह बहुभाषिक ताना-बाना भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था की अंतरात्मा है। इस बहुभाषिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में भाषा और साहित्य की एक ज्ञानशील पत्रिका के रूप में हमारी आकांक्षा राष्ट्रीय विस्तार को छूने की है। हमारा लक्ष्य है कि यह पत्रिका संवाद की वह धारा बने जो विभिन्न भाषिक-सांस्कृतिक तटों को आपस में जोड़े। यह भारत भर के बौद्धिक समुदाय की अभिव्यक्ति की सहज वाणी बनकर राष्ट्रीय चेतना को स्वर दे। इस ज्ञान मंच के माध्यम से बिना किसी पूर्वग्रह के सबका सह-अस्तित्व बनाकर भारतीयता की समेकित पहचान को सशक्त करना भी हमारा उद्देश्य है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बहुत पहले साहित्य को ज्ञान राशि का संचित कोष कहा था। जब तकनीक और बाज़ार व्यक्ति को एकांकी बना रहे हों, तब साहित्य ही हमें हमारी सामूहिक जड़ों से जोड़े रखता है। साहित्य से हमारा आशय कोई शब्दजाल या बौद्धिक विलास मात्र नहीं है। यह वह माध्यम है जो हमें अपनी कमियों और शक्तियों दोनों से परिचित कराता है। यह मनुष्य में करुणा, न्याय और विवेक की लौ जलाता है। 'वाग्धारा' का सदैव यही ध्येय रहा है कि वह शब्दों की इस धारा को सूखने न दे। इस अंक में प्रस्तुत रचनाएँ और विचार इसी चेतना को विस्तार देने का एक प्रयास हैं। इस अंक में विविध विषयों, भाषाओं और साहित्यिक दृष्टियों से जुड़े लेखों को स्थान दिया गया है। यह विविधता ही इस अंक की विशेषता है। यहाँ पुस्तकालय और पुस्तकों के महत्व से लेकर हिंदी कहानी के बदलते स्वरूप, हिंदी आलोचना की परंपरा, संत-काव्य, लोकगीतों में स्त्री की उपस्थिति और पुस्तक-समीक्षा तक अनेक विषय अपने-अपने संदर्भों में विचार का विस्तार करते हैं।

डॉ. अजय कुमार शर्मा का लेख 'विश्वभारती हिंदी भवन पुस्तकालय: स्थापना, विकास का अवलोकन' केवल एक संस्थागत पुस्तकालय के इतिहास और विकास का परिचय नहीं देता, बल्कि पुस्तक और पुस्तकालय की ज्ञान-संस्कृति में केंद्रीय भूमिका को भी रेखांकित करता है। विश्वभारती हिंदी भवन के पुस्तकालय के बहाने यह लेख हमें पुस्तक की दुनिया से परिचित कराता है। शोधार्थी श्वेता सिंह ने कोसी क्षेत्र के प्रसिद्ध साहित्यकार शालिग्राम जी के माध्यम से हिंदी कहानी के बदलते स्वरूप की चर्चा की है। महेन्द्र प्रसाद कुशवाहा का लेख 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आलोचना और रामविलास शर्मा' हिंदी आलोचना के स्वातंत्र्योत्तर परिदृश्य और रामविलास शर्मा के आलोचनात्मक अवदान को केंद्र में रखता है। वहीं डॉ. अखिल मिश्र का 'भाषा के कारागार से आजाद: नामवर सिंह की आलोचना' नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि और भाषा के प्रश्न को एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास है। अरुणा कुमारी ने 'रामस्वरूप चतुर्वेदी की दृष्टि में कबीर और तुलसी' के माध्यम से दो महत्वपूर्ण भक्त कवियों के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी की आलोचनात्मक दृष्टि का विश्लेषण किया है। यह लेख आलोचना और भक्तिकाव्य के अंतर्संबंधों को समझने की दिशा में उपयोगी हस्तक्षेप करता है। लोक-संस्कृति और स्त्री-अनुभव के संदर्भ में सुमि शर्मा का लेख 'असमीया लोकपर्व विवाह गीतों में नारी का स्थान: एक विहंगम दृष्टि' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विवाह गीतों के माध्यम से लोकजीवन में स्त्री की स्थिति, उसकी संवेदना और सामाजिक-सांस्कृतिक उपस्थिति को समझने का यह प्रयास लोकसाहित्य की महत्ता को नए सिरे से रेखांकित करता है। मनीष कुमार उपाध्याय ने 'मेघों के देश में' पुस्तक के बहाने एक समीक्षात्मक लेख प्रस्तुत किया है। रणवीर सुमेध भगवान का संत कबीर पर केंद्रित लेख 'महत्तम समतेचा बंदखोर प्रवक्ता: संत कबीर' कबीर की समता-दृष्टि और विद्रोही चेतना को रेखांकित करता है। इस अंक की बहुभाषिकता को समृद्ध करते हुए सत्या हेम्बरम ने संताली भाषा में '୧୭୧୦୭୨୮ ୧୭. ୨୧୮ ୧୮୦ ୭୦୦ : ୮୮୭ ୦୭୨୭୮୨୭' लेख प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में हितेश बेहरा ने उड़िया साहित्य की रचना 'ପୁରାଣନୀ: ଆଧୁନିକତାବିଷୟସହାୟତାପ୍ରଦାନ' की गंभीर समीक्षा की है।

आइए, हम सब मिलकर विचारों की इस वाग्धारा से जुड़ें और एक अधिक संवेदनशील, समावेशी और विवेकशील समाज के निर्माण में अपनी भूमिका निभाएं।

संपादन मंडली

